Research Paper Literature

केदारनाथ अग्रवाल का काव्य : प्रगतिशीलता और सामाजिक संवेग

Kedarnath Agrawal Ka Kavya : Pragatishilta Aur Samajik Samveg

Santosh Kumar Yadav | Research Scholar, Goa University, Goa.

KEYWORDS

'प्रगतिवाद' और 'प्रगतिशीलता' दोनों शब्दों का अर्थ लगभग एक ही होता है। किंतु साहित्य में प्रगतिवादी साहित्य को प्रायः मार्क्सवादी साहित्य या साम्यवादी साहित्य के रूप में प्रचारित किया जाता रहा है। मार्क्सवाद एक विचारधारा है जो सामंती मूल्यों तथा पूंजीवादी सोच के विरुद्ध सामान्य नागरिकों विशेष कर किसानों और श्रमिकों के पक्ष में कार्य करती है। यह विचारधारा पूरी तरह ऐतिहासिक द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का पालन करती है। इस विचारधारा का विकास विदेशी भूमी में होने के कारण प्रायः लाभ प्राप्त वर्ग अपने सामंती, पूंजीवादी, जातीय और धार्मिक हितों की रक्षा हेतु सदैव इस विचारधारा का विरोध करता है। अतः मार्क्सवाद से प्रभावित दृष्टिकोण को आगे बढ़ाने वाली इस भारतीय धारा को प्रायः विद्वान हिंदी साहित्य में प्रगतिशील धारा के नाम से अभिहित करते हैं। यह प्रगतिशील धारा मूलरूप से उन लोगों की पीड़ाओं का समाधान खोजने का सैद्धांतिक आधार है जो-

हमेशा काम करते हैं,
मगर कम दाम मिलते हैं।[1]

की समस्या से जुझ रहे हैं। यह विचारधारा भारतीय साहित्य में सन 1936 ई. को लखनऊ में मुं. प्रेमचंद की अध्यक्षता में संपन्न प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन से एक स्वरूप ग्रहण किया। उसी समय से जो लेखन आम आदमी के हित में किया जाता है उसे प्रगतिशील अथवा प्रगतिवादी साहित्य के नाम से जाना जाता है। इस विचारधारा की पक्षधरता को प्रगतिवाद के नाम से जाना जाता है। यहां प्रश्न उठता है कि 'प्रगतिशील' और 'प्रगतिवाद' में क्या कोई अंतर है? यह अंतर राजनीतिक मतवादों को लेकर किया जाता है। 'प्रगतिवादी' लेखकों को कम्युनिस्ट पार्टी से संबद्ध कर दिया जाता है। महेंद्र भटनागर का कथन है कि "प्रगतिशील साहित्य और प्रगतिवादी साहित्य में कोई तात्विक अंतर नहीं है।"[2] प्रतिक्रियावादी शक्तियां जनवाद और लोकतंत्र को कमजोर करने के लिए इस प्रकार के भेदों को बढ़ावा देती रहती हैं ताकि इसके आड़ में वे अपने हितों को सुरक्षित रख सकें। अतः वे प्रगतिवाद को प्रगतिशील कह कर उसकी धार को कमजोर करने की कोशिश करती रही हैं।

जिस प्रकार परिवर्तन काल का स्थायी गुण है। उसी प्रकार प्रगतिशीलता भी मानव के सोच, विचार और विकास का स्थायी तत्व है। 'प्रगतिशील' वह व्यक्ति या समाज होता है जो मानव के कल्याण के लिए वैज्ञानिक तथा तार्किक तरीकों से सोचता है। इतिहास में काल और परिस्थितियों के कारण अनेक प्रकार की विषमताएं; धार्मिक, भाषाई, लैंगिक, जातीय, रहन-सहन के कारण उत्पन्न होती हैं। उसी से जीवन जीने की भिन्न-भिन्न शैलियां विकसित होती हैं। जिसके कारण सामाजिक, धार्मिक, और आर्थिक आधारों पर शोषण का जन्म होती है। प्रारंभ में यह शोषण वैधानिक संस्कारों से अपने अमानवीय कृत्यों को आधार प्रदान करता रहा है। किंतु जब जनता में शोषण इस स्तर पर फैल जाता है कि वह अन्याय लगने लगता है। तब समाज या समुदाय में उसके निवारण हेतु प्रतिक्रिया होती है। इस प्रतिक्रिया का नेतृत्व प्रगतिशील विचार के लोग करते हैं। यदि सत्ता के संस्थानों पर रूढ़िवादी शक्तियां विराजमान रहती है तो यह संघर्ष हिंसक एवं घृणित बन जाता है। हिंसा का परिणाम दोनों पक्षों के लिए हानिकारक होता है। अतः अहिंसक परिवर्तनकारी संघर्ष सभी पक्षों के लिए मध्यममार्ग के रूप में स्वीकार्य होता है। इस मध्यममार्ग का नेतृत्व प्रगतिशील लोग करते हैं। साहित्य में सभी प्रकार के शोषणों से मानव मात्र को मुक्त कर उसके मान, सम्मान और स्वतंत्रता की गौरवपूर्ण स्थापना करने वाली रचनाएं प्रगतिशील कहलाती हैं। कविता के माध्यम से मानव मुक्ति की रचनाएं करने वाले कवि प्रगतिशील कवि कहे गए हैं तथा उनकी कविताओं को प्रगतिशील काव्य की श्रेणी में रखा जाता है। साहित्य और समाज का संबंध हमेशा ही अत्यंत गहरा रहा है। इसलिए वह एक दूसरे को प्रभावित, नियंत्रित और संचालित भी करते रहे हैं। साहित्य की इसी प्रवृत्ति के कारण प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य को 'जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब' कहा है।

जिसे हम प्रगतिशील कविता कहते हैं वह अकस्मात नहीं पैदा हो गई है। उसकी शुरूआत क्षीण रूप में ही बहुत पहले चाहे सामाजित, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्र या कला-साहित्य-संस्कृति क्षेत्र में हो चुकी होती है। जिसे लोक मंगल की भावना के नाम से भी संबोधित किया गया है। यह प्रगतिशील प्रवृत्ति एक समय में केंद्रीय प्रवृत्ति के रूप में दिखाई पड़ती है। जिसका विकास आगे चलकर व्यवस्थित और विस्तृत रूप में होता है। जिसे कभी कभी विद्रोह भी कहा जाता है, पर वास्तव में वह प्रकारांतर से परंपरा का विकास ही होता है। भारतीय संदर्भ में प्रगतिशील कविता एकाधिकारी शोषक-शासक वर्ग के विरूद्ध जनमुक्ति का उद्घोष बन कर आई है। यह कविता सामंती, साम्राज्यवादी और पूंजीवादी लूट तथा भ्रष्टाचार, अंधविश्वास, धार्मिक, जातीय, नस्ली, भाषाई तथा लैंगिक श्रेष्ठता के विरूद्ध सशक्त विरोध दर्ज करती है। इसके अतिरिक्त जनता का शोषण करने वाले रूपों, नियमों, कानूनों, अधंविश्वासों का यथार्थ चित्रण कर उनका पर्दाफाश करती है। इसके अतिरिक्त प्रगतिशील कविता जनता को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करने, उनकी क्षमता को बढ़ाने तथा उन्हें एक जुट हो कर मुक्ति के लिए जूझने, टकराने और संघर्ष करने की प्रेरणा भी देती है।

केदारनाथ अग्रवाल इसी प्रगतिशील काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं जो मार्क्सवादी विचार धारा तथा भारतीय भाव-धारा के मेल से जीवन दृष्टि प्राप्त किए हैं। कवि की मानवतावादी दृष्टि वैदिक कालीन सोच "वसुधैव कुटुंबकम्" की भारती दृष्टि है जो "मानवतावादी साहित्यकार 'रोमा रोला' की रचना 'कोलासब्रेगनन'; जो एक साधारण काम काजी आदमी को समर्पित है"[2], से मेल खाती है। ऐसी ही अखंड मानव जीवन दृष्टि की सर्वोत्तम निर्मित केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में हुई है। इसी लिए वे लोक संवेदना और लोक सौंदर्य के वे सबसे बड़े प्रगतिशील कवि हैं। उनकी काव्य संवेदना निम्नलिखित पंक्तियों में उजागर होती है -

छोटे हाथ
सबेरा होते
लाल कमल से खिल उठते हैं,
करनी करने को उत्सुक हो

धूप हवा में हिल उठते हैं।[3]

समाज के लोग आपसी आचरण सामाजित सुरक्षा और जीवन निर्वाह के उपाय आदि क्रियाओं के लिए प्रायः एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। इस समाज की निम्नतम इकाई जातियां हैं। भारत में जातियों के समूहों से वर्ण बने हैं। जब तक जातियों में आंतरिक संवेग न पैदा हो वे नियतिवादी बनी रहती है। जिसके कारण जाति के प्रगतिशील लोगों पर जातीय परंपराओं, रूढ़ियों और अंधविश्वासों के पालन हेतु बाहरी और भीतरी दबाव पड़ता है। जो जाति के लोगों को निराश, संकीर्ण और भाग्यवादी बनाए रखता है। इस नियतिवाद को बदने के प्रयत्नों को समाजिक संवेग कहते हैं। इसके विपरीत पश्चिमी देशो में जाति और वर्ण की जगह समाज; समुदाय और वर्ग के आधार पर संगठित होता है। समान कार्य करने वालों से समुदाय तथा समान आर्थिक हैसियत रखने वालों से वर्ग बनता है। कार्य कुशलता और आर्थिक स्थिति में परिवर्तन से लोगों के समुदाय और वर्ग में बदलाव होता रहता है अर्थात किसी समाज का सदस्य होने के लिए व्यक्ति में कौशल का विकास और आर्थिक उन्नति करने की शर्त लागू होती है। जबकि भारत में जाति और वर्ण की सदस्यता की योग्यता जन्म आधारित है। जिस कारण से इस देश में कार्यों को छोटा और बड़ा माना जाता है। जबकि पश्चिमी देशों में काम लाभकारी और अलाभकारी माने जाते हैं। इसी कारण भारतीय उपमहाद्वीप में जातीय ऊंच-नीच की भावना देखने को मिलती है। जबकि पश्चिमी देशों में आर्थिक आधारों पर भेद-भाव किया जाता है- जैसे थ्री स्टार, फाइव स्टार, सेवन स्टार होटल आदि। किंतु भारतीय समाज में कौशल क्षमता के स्थान पर जाति-वर्ण का अधिक ध्यान दिया जाता है। इस कारण से कथित निम्न-वर्णीय जातियां प्रगति धारा से जुड़ नहीं पाई। इस जातीय बोध को निराला की इन पंक्तियों से समझा जा सकता है-

आज अमीरों की हवेली,
किसानों की होगी पाठशाला,
धोबी, पासी, चमार, तेली
खोलेंगे अंधेरे का ताला।[4]

यह कहा जा सकता है कि जातीय बोध के कारण मार्क्सवादी वर्गीय चेतना भारत में बहुत हद तक कारगर साबित नहीं हुई। किंतु इस चेतना का विभिन्न स्तरों पर प्रगतिशील लोगों द्वारा भारतीय करण किया गया। केदारनाथ अग्रवाल का काव्य पूरी तरह से उसी मार्क्सवादी चेतना का भारतीयकरण है, जो समाज में विचार संचार के माध्यम से संवेग पैदा करने का सफल प्रयास है। समाज में जोश और संवेग शक्ति भरने का प्रयास करते हुए कवि कहता है-

डंका बजा गांव के भीतर
सब चमार हो गए इकट्ठा।
एक उठा बोला दहाड़ के :
"हम पचास हैं,
मगर हाथ सौ फौलादी है।
सौ हाथों के एका बल बहुत बड़ा है।
हम पहाड़ को भी उखाड़कर रख सकते हैं।
जमींदार यह अन्यायी है।
कामकाज सब करवाता है,
पर पैसा देता है छै ही।"[5]

केदार 'सत्यमेव जयते' जैसे भारतीय अवधारणा में पूरा विश्वास करते थे। इस लिए जनता में व्याप्त निराशा और हताशा दूर करने का सदैव प्रयास करते थे। छली, धोखेबाजी, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, घूस, सूद आदि समाज में व्याप्त दुष्प्रवृत्तियों के कारण परिश्रम करने वाला योग्य व्यक्ति हार जाता है। प्रायः भारत के किसान, छोटे-छोटे लोग, मजदूर आदि धर्म के उदात्त गुणें से इतने भरे होते हैं कि वे छल करना, धोखा देना, घूस देना आदि दुर्गुणों से दूर होते हैं, जिसके कारण उनका सत्य पराजित होता रहता है। इस पराजय से उनमें निराशा, अवसाद तथा कुंठा पैदा हो जाती है जिससे वे यथास्थितिवादी बन जाते हैं। यही कारण है कि भारतीय समाज में नियतिवादी स्थिति प्राचीनोत्तर काल से मध्यकाल होते हुए स्वतंत्रता पूर्व तक बनी हुई थी। अतः कवि केदारनाथ अग्रवाल उन स्थितियों का अपनी कविता के माध्यम से यथार्थ चित्रण करते हैं ताकि सभी पीड़ितों को समझ में आए और उनमें बदलाव का संवेग पैदा हो-

अधिकांश जनता का
रद्दी की टोकरी का जीवन है,
संज्ञाहीन, अर्थहीन,
बेकार, चिरे-फटे, टुकड़ों सा पड़ा है!
देरी है - एक दिन, एक बार, आग के छूने की,
राख हो जाना है।[6]

केदारनाथ अग्रवाल सच्चे अर्थों में प्रगतिशील कवि थे। इस लिए वह समाज में चेतना की आग जलाना चाहते थे ताकि उनमें संवेग पैदा हो जाय। जिससे आम आदमी अपनी पीड़ा को दूर करने के लिए प्रयास करे। मनुष्य होने का अभिमान करे, इस लिए कवि कहता है-

हार न मानो,
और न हारो, जीना जानो।
वह जीवन की आन हमारी शान है,
और हमारे भुजवीरों की प्रान है।[7]

केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी कविता में 'लोहा' शब्द का प्रयोग बार-बार किया है। जिसकी व्यंजना समाज और उसमें रहने वालों को शक्तिशाली और सक्षम बनाने से होती है। नारी की स्थिति भारतीय समाज में बहुत दयनीय। कवि नारी के कोमल और सहनीय स्वभाव को उसकी कमजोरी नहीं बल्कि उसकी शक्ति बताता है-

मैंने उसको
जब जब देखा
लोहा देखा।[8]

केदारनाथ अग्रवाल की रचनाएं सत्य, श्रम, सौंदर्य और सुख का निर्माण करने वाली काव्य रचनाएं हैं। अपनी रचनाओं के माध्यम से वे समाज में संवेग लाना चाहते हैं। इस लिए कवि दोगले चरित्रों और दोहरे माप दंडों वाली विचारधारा का पूरी तरह विरोध करते हुए जनता के सामने लाता है-

रनिया मेरी देस बहिन है
अति गरीब है- अति गरीब है।
मैं रनिया का देस बंधु हूं,
अति अमीर हूं- अति अमीर हूं।[9]

वर्तमान समय में कथित रूप से प्रचारित किया जा रहा है कि प्रगतिशील शक्तियां समाप्त हो रही हैं। यह पूरी तरह तथ्यहीन और मूर्खतापूर्ण लगता है। प्रगतिशीलता जिसका बीजारोपण केदारनाथ अग्रवाल जैसे महान कवियों ने किया था, उसकी फसल उग गई है। इस फसल को भारत के प्रदेशों में उच्चस्थ पदों पर बैठने वाले राजीतिक दलों के नेताओं के रूप में देखा जा सकता है जिनमें बड़ी संख्या में किसान और मजदूर के बेटे-बेटियां हैं। इसके अलावा सदा से कमजोर मानी जाने वाली जातियां अपना अधिकार और हिस्सा प्राप्त करने हेतु संगठित भी हो रही हैं। यह सिलसिला यहीं नहीं रुकता बल्कि देश में चाय बेचने तथा आम आदमी बनने की होड़ लगी है। जनता लोकतंत्र और जननेता में विश्वास करने लगी है। यह सब सकारात्मक संकेत और उज्ज्वल भविष्य मात्र प्रगतीशील कवियों और साहित्यकारों के योगदान का प्रतिफल है। उन महान साहित्यकारों और कवियों में केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं की भूमिका अग्रणीय है।

REFERENCES

1. कहें केदार खरी खरी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 30, साहित्य भंडार, इलाहाबाद। | 2. श्रम का सौंदर्यशास्त्र और केदारनाथ अग्रवाल का काव्य, मधुछन्दा, पृ. 6, परिमल प्रकाशक, इलाहावाद। | 3. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 133, साहित्य भंडार, इलाहावाद। | 4. निराला रचनावली - 2, सं. नंदकिशोर नवल, पृ 162, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। | 5. कहें केदार खरी खरी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 21, साहित्य भंडार, इलाहावाद। | 6. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 29, साहित्य भंडार, इलाहावाद। | 7. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 158, साहित्य भंडार, इलाहावाद। | 8. फूल रंग बोलते हैं, केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 98, साहित्य भंडार, इलाहावाद। | 9. गुलमेंहदी, केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 48, साहित्य भंडार, इलाहावाद।